इकाई 11 धीवरगीति : प्रथमा एवं द्वितीया गीति (प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का जीवनवृत्त एवं कर्तृत्व

11.3 धीवरगीति : 'प्रथमा एवं द्वितीया गीति' में वर्णित 'युगबोध एवं सामाजिक सन्देश'

11.4 प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी विरचित गीति धीवरम् का 'वैशिष्ट्य'

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.8 बोध प्रश्न / उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी के जीवनवृत्त एवं कर्तृत्व को जान सकेंगे।
- प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी रचित धीवरगीति : प्रथमा एवं द्वितीया गीति में वर्णित युगबोध एवं सामाजिक सन्देश को ज्ञात कर सकेंगे।
- प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी विरचित गीति धीवरम् के वैशिष्ट्य के विषय में जान सकेंगे।
- इसमें प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली को जान सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने संस्कृत कवियों की पूरी परम्परा को आत्मसात् किया है। यह कार्य सरल नहीं है क्योंकि संस्कृत की काव्य परम्परा सम्भवतः विश्व की सबसे लम्बी परम्परा है। वाल्मीकि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक तथा कालिदास, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष को समेटने के लिए महाप्राण कवि चाहिए। इस प्रकार प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी अन्य कृतियों के समान 'गीतधीवरम्' में इस दिशा में अद्भुत प्रदर्शन किया है। गीतधीवरम् के प्रथम सर्ग का प्रथम छन्द ही प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की संस्कृत के मुहावरे की पकड़ को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। इस इकाई 10 में प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी के जीवनवृत्त एवं कर्तृत्व तथा धीवरगीति : प्रथमा एवं द्वितीया गीति में वर्णित युगबोध एवं सामाजिक सन्देश को स्पष्ट किया जायेगा।

11.2 प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का जीवनवृत्त एवं कर्तृत्व

आधुनिक संस्कृत कविता के समीक्षक कवि एवं काव्यशास्त्री तथा काव्यशास्त्रमर्मज्ञ प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म **15 फरवरी सन् 1949** में मध्यप्रदेश के राजगढ़ जनपद में

हुआ था। इनके पिता का नाम **पं. गोकुल प्रसाद त्रिपाठी** तथा माता का नाम **श्रीमती शकुन्तला देवी** था। प्रो. त्रिपाठी ने सागर विश्वविद्यालय और उदयपुर वि.वि. में नियमित प्राध्यापक के रूप में लगभग 43 वर्षों तक कार्य किया। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी 'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली' के कुलपति पद से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान में कुलपति के पद पर रहते हुए प्रो. त्रिपाठी ने संस्कृत भाषा साहित्य की निरन्तर निष्ठा के साथ सेवा की। इन्होंने अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली में तथा इसके अन्य परिसरों में तथा अन्यान्य शिक्षण संस्थाओं में संस्कृत के विविध क्षेत्रों की अनेक संगोष्ठियाँ तथा कार्यशालाएँ सम्पन्न करवायीं। जिन्होंने दोनों (प्राचीन और अर्वाचीन) संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। इन गोष्ठियों के अतिरिक्त प्रो. त्रिपाठी ने कई कवि सम्मेलन, कई प्राचीन और अर्वाचीन महत्वपूर्ण कवियों का इतिहास लेखन भी करवाया। प्रो. त्रिपाठी के कार्यकाल में ही ' राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान', नई दिल्ली में आधुनिक संस्कृत साहित्य को प्रश्रय मिला तथा आधुनिक संस्कृत साहित्य (सचल पुस्तकालय) का उद्घाटन हुआ तथा आधुनिक संस्कृत साहित्य की रचनाओं को एकत्रित करने का प्रयत्न किया गया। इस महनीय पद के पूर्व प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश में दो सत्र तक कलासंकाय के अध्यक्ष रह चुके हैं। इन्होंने अपनी कार्यावधि में ही इसी विश्वविद्यालय के कार्यवाहक कुलपति के रूप में भी दो बार कार्य किया है। यह उत्तरदायित्व इन्हें मध्यप्रदेश के राज्यपाल द्वारा छः–छः महीने के लिये दो बार कार्यवाहक कुलपति का भी पदभार प्रदान किया गया था।

कर्तृत्व–

प्रो. त्रिपाठी नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र के उद्भट विद्वान् हैं। इन्होंने लगभग 159 पुस्तकें, 215 शोधपत्र तथा अनेक समालोचनात्मक निबन्ध लिखे हैं जो देश विदेश की प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

प्रो. त्रिपाठी ने लगभग 30 संस्कृत नाटकों की भी रचना की है। ग्रन्थों के संख्या की यह सूचना पूर्व की है वर्तमान में भी प्रो. त्रिपाठी महोदय का लेखन अनवरत रूप से चल रहा है। अतः अन्य बहुविध ग्रन्थ और भी प्रकाशित हुए हैं तथा हो भी रहे हैं। प्रो. त्रिपाठी ने अपनी कार्यावधि में शताधिक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों और सम्मेलनों का आयोजन भी संस्कृत शिक्षण और संरक्षण के निमित्त करवाया। प्रो. त्रिपाठी के नेतृत्व में डॉ. हरिसिंह गौर वि. वि., सागर ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली द्वारा सन् 1994 में SAP (विशिष्ट सहायक कार्यक्रम) योजना के अन्तर्गत DRS (विभागीय शोध सहायता) का गठन किया। यह सन् 2007 में DSA (विभागीय विशिष्ट सहायता) के रूप में पदोन्नत हुआ। प्रो. त्रिपाठी सन् 1994 से लेकर 2008 तक इसके मुख्य समन्वयक रहे। प्रो. त्रिपाठी ने पाण्डुलिपि पुस्तकालय को भी अस्तित्व प्रदान किया जिसके अन्तर्गत विभिन्न दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संचयन किया गया। इस कार्यक्रम का नाम 'प्रक्रिया' प्रो. त्रिपाठी द्वारा रखा गया तथा 10 भागों में 'प्रक्रिया' प्रकाशित हुआ जिसमें विभिन्न दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ प्रकाशित हुई।

प्रो. त्रिपाठी ने संस्कृत और हिन्दी भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें उपन्यास, नाटक, कहानी संग्रह, कविताएँ तथा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। प्रो. त्रिपाठी ने **'संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास'** भी लिखा है। जो विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी से सन् 2001 में प्रथम संस्करण तथा सन् 2007 में द्वितीय संस्करण के रूप में प्रकाशित है।

'संस्कृत साहित्य 20वीं शताब्दी' आपका आधुनिक संस्कृत साहित्य का शोधपरक ग्रन्थ है, जिसमें आधुनिक संस्कृत कवियों एवं उनकी कृतियों विशेषतः कविताओं का समीक्षात्मक निरूपण प्रो. त्रिपाठी द्वारा किया गया है। यह ग्रन्थ राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा सन् 1999 में प्रकाशित है। आधुनिक संस्कृत साहित्य श्रीः जिसमें प्रो. त्रिपाठी ने आधुनिक कविताओं की समीक्षा प्रस्तुत की है। यह ग्रन्थ प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली द्वारा सन् 2001 में प्रकाशित है।

'संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा' नामक ग्रन्थ में प्रो. त्रिपाठी ने संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य की परम्परा पर प्रकाश डाला है। यह ग्रन्थ भी प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली द्वारा सन् 2004 में प्रकाशित है। भारतीय काव्यशास्त्र की आचार्य परम्परा इस ग्रन्थ में प्रो. त्रिपाठी ने संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा के प्रसिद्ध आचार्यों के मन्तव्यों को प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से सन् 2007 में प्रकाशित है।

'अभिनवकाव्यालंकारसूत्र' प्रो. त्रिपाठी का आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें प्रो. त्रिपाठी ने वामन के काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त को पुनर्प्रतिष्ठित करते हुए अलंकार को काव्य की आत्मा कहा है तथा ग्रन्थ में नवीन अलंकारों, काव्यविधाओं का पल्लवन एवं लक्षण प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से सन् 2005 में प्रकाशित है।

'अथर्ववेद का काव्य' प्रस्तुत ग्रन्थ भी विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित है। इस ग्रन्थ में अन्नसिद्धि, मेधाजनन, ब्रह्मचर्य, राष्ट्रसंवर्धन, परिवार का अभ्युदय, समाजकल्याण, राजधर्म, राजकर्म, रोगोपचार, संस्कार, अभिचार तथा तत्त्वमीमांसा आदि महत्त्वपूर्ण विषय जो अथर्ववेद के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है, इसका साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रो. त्रिपाठी ने किया है। इसके अतिरिक्त प्रो. त्रिपाठी ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन अनुवाद एवं व्याख्याएँ की हैं, जो विभिन्न प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थानों तथा संस्थाओं से प्रकाशित है।

'आधुनिक संस्कृत साहित्य सन्दर्भ सूची' का प्रो. त्रिपाठी द्वारा पुनः सम्पादन किया गया है जिसमें लगभग 5000 साहित्य की सूचनाएँ हैं। यह राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली से प्रकाशित है।

प्रो. त्रिपाठी की कविताएँ सर्वजनीन एवं अपनी महत्त्वपूर्ण भंगिमाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। प्रो. त्रिपाठी ने अपनी कविताओं में प्रायः सामान्य जन–जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। अतः प्रो. त्रिपाठी की कविताएँ लोक प्रशंसित एवं लोकप्रतिष्ठित हैं।

'सन्धानम्' सन् 1989 प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित आपके प्रसिद्ध काव्यसंग्रह हैं। इनमें सन्धानम् में 55 कविताएँ अन्तर्जवनिकम् में विभाजित हैं।

'लहरीदशकम्' सन् 1991 में दस लहरी काव्य संकलित हैं जिनके नाम क्रमशः वसन्तलहरी, निदाघलहरी, अद्यापिलहरी और प्रस्थानलहरी हैं। ये समस्त लहरी कविताएँ लोक से सम्बद्ध हैं। कविताओं की विषयवस्तु की दृष्टि से प्रो. त्रिपाठी की कविताओं में नवीनता, आधुनिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों की विसंगतियों का व्यंग्यपूर्ण चित्रण देखने को मिलता है। उनकी कविताओं में भावप्रवणता के साथ कल्पना का द्वारिद्रय परिलक्षित नहीं होता। उदाहरणार्थ यह कविता द्रष्टव्य है–

स्यूतं–स्यूतं पुनरपि च यच्छीर्यते धार्यमाणं
गात्रे क्लृप्तं कथमपि तथाऽच्छादने नालमेव।

धृत्वा देहे हिममयमितं श्वेतकार्पासवस्त्रं
पृथ्वी शेते विकलकरणा निर्धना गेहिनीव।।

अर्थात् द्वारिद्रय गृहिणी की भाँति व्याकुल इन्द्रियों वाली पृथ्वी, इस ठण्डे सफेद सूती वस्त्र को शरीर पर धारण करके सो रही है। इसका वस्त्र बार–बार सोये जाने पर भी धारण करने पर गलता जा रहा है। अंग पर पूरा भी नहीं पड़ता और न ही ओढ़ने का काम करता है। प्रस्तुत पद में स्थान–स्थान पर फटी चादर ओढ़कर सोती गृहिणी का मनोरम चित्र कवि त्रिपाठी ने चित्रित किया है। इस प्रकार कवि त्रिपाठी अपनी कविताओं में प्रायः सामान्य जन जीवन को अंकित करते हैं। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण उनकी कविताओं में देखने योग्य हैं जो अत्यन्त भावप्रवण हैं।

पुरस्कार एवं सम्मान–

1. **संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास** पर उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी पुरस्कार सन् 1976 में प्राप्त हुआ।
2. **वाल्मीकि विमर्श** पर संस्कृत अकादमी का पुरस्कार सन् 1979 में मिला।
3. **कुन्दमाला** संस्कृत नाटक के अनुवाद पर मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का राजशेखर पुरस्कार सन् 1982 में मिला।
4. **दमयन्ती** मौलिक हिन्दी नाटक पर साहित्य कला परिषद्, दिल्ली का पुरस्कार सन् 1989 में मिला।
5. **कालिदास की समीक्षा परम्परा पर** अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद्, पूना द्वारा सन् 1988–89 की सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में पुरस्कृत।
6. **हिन्दी की कुछ कहानियाँ** अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत।
7. मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा **भरटकद्वात्रिंशिका** पर 1987 का व्यास पुरस्कार प्राप्त हुआ।
8. एशियाटिक सोसायटी, बम्बई द्वारा 1989 का म.म.पी.वी काणे स्मृति स्वर्णपदक प्राप्त हुआ।
9. **लहरीदशकम्** पर उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी का कालिदास पुरस्कार सन् 1993 में प्राप्त हुआ।
10. मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा सन् 1992 में **भोज पुरस्कार** प्राप्त हुआ।
11. **कम्बन् सम्मान** हिन्दी अकादमी, कलकत्ता द्वारा प्राप्त हुआ।
12. मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सन् 1992 में **वागीश्वरी पुरस्कार** प्रदान किया गया।
13. सन् 1994 में प्रो. त्रिपाठी को साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा पुरस्कृत किया गया। इसके अतिरिक्त भी सम्पूर्ण भारत की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं द्वारा प्रो. त्रिपाठी को उनकी संस्कृत साधना के निमित्त सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया है।

11.3 धीवरगीति : प्रथमा एवं द्वितीया गीति में वर्णित युगबोध एवं सामाजिक सन्देश

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी विरचित गीतधीवरम् रागकाव्य है, जो काव्य की आधुनिक विधा के रूप में प्रचलित है। रागकाव्य का लक्षण बतलाते हुए स्वयं प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का कथन है–

विविधैः रागैर्गेयं ध्रुवकान्वितगीतिसंयुतं रागकाव्यम्।।

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

अर्थात् विविध रागों में गेय, ध्रुवक से अन्वित तथा गीति संयुत राग काव्य होता है। यथा–गीतगोविन्द तथा गीतधीवरम्। रागकाव्य का लक्षण बतलाते हुए प्रो. रहसविहारी द्विवेदी का कथन है–

लोकोत्तराह्लादमयं प्रसन्नं सङ्गेयतालध्रुवकानुबद्धम्।
रागात्मकं नाट्यकृतेऽपियुक्तं नृत्यत्पदाङ्कं किल रागकाव्यम्।।

(दूर्वा 2005)

युगबोध–प्रस्तुत दो कविताएँ 'गीतधीवरम्' काव्य में संकलित हैं। यह दोनों कविताएँ प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी विरचित हैं। इन दोनों कविताओं में कवि ने (धीवरों) मल्लाहों द्वारा गाये जाने वाले गीतों (गीतियों) को संस्कृत भाषा में निबद्ध किया है। दोनों ही गीतियाँ सारगर्भित हैं। इनमें बिम्ब और प्रतिबिम्ब भाव उपश्लिष्ट हैं।

प्रस्तुत गीता एवं उपनिषद् के भाव को कवि ने अपनी कविताओं में अवतारित किया है और दोनों को उद्बोधित किया है कि वे अपनी समस्त समस्याओं का निदान अपनी उच्च संकल्पशक्ति के द्वारा कर सकते हैं, क्योंकि लोक में प्रचलित भी है कि मन के हारे हार, मन के जीते जीत। इसलिए निर्भय, निडर हो, धैर्य धारण कर अपनी उच्च संकल्पशक्ति और दृढ़ मनोविश्वास के साथ सागर तथा संसार–सागर का संतरण करें। कवि का इस लहरीकाव्य में यही सन्देश है। वर्तमानकालीन मनोव्यथा सम्पन्न समाज के लिए यह गीतियाँ प्रेरणादायी हैं।

प्रथम सर्ग–गीति–4

एक तरफ इस कविता में धीवरों की, उनके गान के द्वारा संकल्पना शक्ति को कवि ने पुनर्संस्कृत किया है, तो दूसरी तरफ मानव समाज की संकल्पना शक्ति को। जिस प्रकार धीवर अथाह समुद्र में नौका चलाते–चलाते थक जाता है तो उसका मन कमजोर होने लगता है और वह निराशाग्रस्त हो जाता है, उसी प्रकार इस संसार सागररूपी नौका (गृहस्थजीवन रूपी नौका) को चलाते–चलाते मनुष्य थक जाता है।

विपुलाधरणी ततोऽपि विपुलः सागरतलविस्तारः
विपुलतरोऽयं परं त्वदीयः संकल्पाकूपारः।

अर्थात् यह पृथ्वी अत्यन्त विस्तृत है परन्तु उससे भी विस्तार वाला सागरतल है। परन्तु हे धीवर! इस सागर से भी अत्यधिक विशाल आपका अपार संकल्प है। इस काव्य में कवि कहना चाह रहा है कि विस्तृत सम्पूर्ण पृथ्वी है और उससे भी विशाल सागर तल है। इन दोनों से मनुष्यों को सीख लेनी चाहिए कि पृथ्वी के अन्दर इतना धैर्य है कि सम्पूर्ण सिर पर सम्पूर्ण संसार को बसा करके रखा है और उससे भी महान सागर है

जिसने लहरा कर भी गम्भीर भाव को बना रखा है किन्तु हे मनुष्यों! उससे विशाल तुम्हारा संकल्प है क्योंकि सभी मनुष्य चाहे कर्मनिष्ठ हो अथवा ज्ञाननिष्ठ हो अथवा बुद्धिमान हो और चाहे दूसरे को सत्बुद्धि देने वाले ध्यान निष्ठ योगी हों, सब संकल्प के द्वारा ही कार्य करते हैं। वे कर्म चाहे शान्ति के समय किये जाने वाले शुभ, श्रेष्ठ और उत्तम कर्म हो और चाहे अशांति के समय किये जाने वाले कार्य हो। सबका प्रारम्भ अपार संकल्प है। यदि संकल्प शुद्ध और पवित्र संकल्पों वाला होगा तो मनुष्य के कर्म भी शुभ और उत्तम होगें जिससे परिवार, समाज, राष्ट्र व समस्त संसार में शांति का साम्राज्य स्थापित होगा।

द्वितीय पंद्याश में बताया गया है कि समुद्र में धीवर को नानाविध तूफानों, झंझावतों, समुद्री हवाओं का सामना करना पड़ता है–

उद्धर धीवर
मनसः क्लेशा–
दात्मनैव चात्मानम्।

अर्थात् अतः हे धीवर! मानसिक क्लेशों का निराकरण (उपशमन) आप अपनी आत्मा में आत्मा के द्वारा ही करो। क्योंकि सभी मनुष्यों के अन्दर विद्यमान वह अमर ज्योति है। मन मनुष्य की उच्चतम श्रेष्ठ शक्तियों पर नियंत्रण रखता है। वे शक्तियाँ प्रखर रूप को तभी प्राप्त कर सकती हैं जब मन पूर्ण नियंत्रण में हो। इस प्रकार मनुष्य में निहित शक्तियों का प्रकाशन करने वाला, ग्रहों नक्षत्रों की भाँति जीवन को प्रभावित करने वाला, इन्द्रियों को अपने–अपने कार्यों के ग्रहण करवाने के लिये पवित्र करवाने वाला मन है। इसलिये हे धीवरो! मानसिक क्लेशों को शुभ संकल्पों के द्वारा दूर करो और आत्मा में ही अपने आप को प्रसन्न रखो।

सांसारिक जीवन में प्रत्येक मनुष्य के घर परिवार में, समाज में, राष्ट्र में तथा उसके स्वयं के व्यक्तिगत जीवन में उसे विविध प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, अतः वह भी थक जाता है और निराश हो जाता है। विचलित होने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारे शास्त्र गीता एवं उपनिषदों का यही सन्देश है कि अपना उद्धार मनुष्य स्वयं अपने आप करे।

उच्छलिता एते नौकाग्रं ग्रसितुमिवोग्रा मीनाः।
तव भुजदण्डपेशिकामीना आभ्यस्त्वधिकं पीनाः।।

अर्थात् आप की नौकाओं के आगे ये उछलती मछलियाँ जो अत्यन्त उग्र हैं और मानों निगलना चाह रही है। उन स्थूल (मांसाश्लिष्ट) मछलियों से भी अत्यधिक पुष्ट आपके भुजदण्ड (भुजाएँ) है। कहने का आशय यह है कि समस्याओं से भागकर नहीं उसका सामना करके ही जीवन में सफलता हासिल की जा सकती है। आप समस्याओं से डरकर भागिये मत बल्कि आपके जीवन रूपी नौका के आगे समस्या रूपी मछलियाँ भले ही अत्यन्त उग्र और कठोर हैं मानो निगलना चाह रही हैं किन्तु उन स्थूल मांस से लदी हुई मछलियों (समस्याओं) से भी अधिक मजबूत और पुष्ट आपकी दोनों भुजाएँ अर्थात् आपका मानसिक संबल एवं दृढ़ निश्चय है। आचार्य जयशंकर प्रसाद ने कहा है कि–

वह पथ क्या पथिक कुशलता क्या।
जिस पथ पर बिखरे शूल न हो।।

वह नाविक की धैर्य कुशलता क्या।
जिसके धाराएँ प्रतिकूल न हों।।

चतुर्थ पद्यांश में कवि धीवर एवं मनुष्यों दोनों को अपनी गीतियों के माध्यम से सम्बोधित करता हुआ कह रहा है कि वह निराश न हों क्योंकि सबसे बड़ा इस विश्व ब्रह्माण्ड में मन का संकल्प है और उस संकल्पशक्ति को दोनो! नाविक (धीवर) और जनमानस अत्यन्त सुदृढ़ बनायें और सागर (संसार–सागर) को पार करें।

दैन्यविहीनं
त्वं विस्तारय
सुदृढ़ मनोवितानम्।

कहने का आशय यह है कि मानव दीनता के भाव से ज्यादा ग्रस्त हो रहा है इसलिए कवि कह रहा है कि इसको त्याग करके अपने मन में संकल्प को मजबूत बनाओ अर्थात् कवि कहना चाह रहा है कि दीनता अर्थात् दरिद्रता, कायरता एवं उदासी तथा दुःख से उत्पन्न अधीनता का भाव त्यागो। मनुष्य जिदंगी में समस्याओं को देखकर दीनता, दरिद्रता अथवा कायरता से ग्रसित न हो आधुनिक समय में समस्याओं के लड़ने की क्षमता को त्यागकर उदासी और दीनता का परित्याग करके तुम अपने मन के संकल्प को और सुदृढ़ बनाओं तथा उसका विस्तार करो।

लहरीसङ्घट्टननादोऽयं तीव्रो जनयति भीतिम्।
नालं प्रसृतामभिभवितुं त्वत्कण्ठनिर्गतां गीतिम्।।

सागर से समुत्पन्न इन लहरियों (लहरों) का नाद (कलकल ध्वनि) तीव्र भय उत्पन्न कर रहा है परन्तु तुम्हारे कण्ठ से निर्गत जो गीत है, उसका अभिभव (पराभव) करने में वह पर्याप्त (समर्थ) नहीं है। कहने का आशय यह है कि सागर से निकलते हुए लहरियों का नाद भीषण ध्वनि तीव्र भय से पूरित होकर गर्जना को उत्पन्न करने जा रहा है। वायु के प्रवाह से एक लहर के पीछे दूसरी लहर के आने के क्रम से उसकी कल–कल ध्वनि तीव्र भय को उत्पन्न कर रही है, परन्तु कवि धीवर को सम्बोधित करते हुए कह रहा है कि तुम्हारे कण्ठ से निकलती हुई निडर, स्थिर और गम्भीर भाव से पूरित गीत उसका पराभव (पराजय) करने में पूरी तरह समर्थ है।

स्पृशत्वकुण्ठित–
मागगनान्तं
दिग्वलयं तव गानम्।

अर्थात् तुम्हारा अकुण्ठित यह गान (गीति) समस्त दिशाओं तक प्रसरित हो रहा है और आकाश तक को छूता हुआ गुंजायमान है। कहने का आशय यह है कि अकुण्ठित यह तुम्हारे कण्ठ से निकला गीत, कितना मधुर, मनोरम और उज्ज्वल है। इसे तुम सागर की लहरों में सागर के तट पर, तिनको में, पेड़ों में, पहाड़ों में, तारों से सजे आकाश में, सूर्य की किरणों में, बरसते हुए बादल में, तथा समस्त दिशाओं में आकाश को छूता हुआ गुंजायमान हो रहा है।

प्रसरति तमस्तोम एषोऽयं यदपिच्छन्नाकाशः
कृन्तति किन्तु तवायमथैनमन्तर्दीपप्रकाशः।

अर्थात् यद्यपि यह आच्छान्न आकाश तम (गहनतम अन्धकार) को प्रसरित कर रहा है किन्तु जो तुम्हारा यह अन्तर्दीप प्रकाश अर्थात् गीति रूपी प्रकाश है, ये उसको काटने में समर्थ है। कहने का आशय यह है कि आकाश में बादलों के समूह रूपी अन्धकार प्रतिक्षण फैल रहा है किन्तु तुम्हारें प्रेमगीत के सौन्दर्य उसके गहनतम अंधकार को प्रकाश में परिवर्तित करते है तथा तुम्हारे गीत से आकाश में चन्द्रमा भी विमुग्ध होकर हसने लगता है। वृक्ष भी तरह–तरह की पत्तों और फूलों से अपने शरीर को सजाकर खड़े हो जाते है अर्थात् प्रकाश होने पर वृक्ष भी सज्जित से हो जाते है। तुम्हारे गीत से सम्पूर्ण संसार खुशी को सम्भाल नहीं पाते और प्रसन्न होकर चहकने लगते हैं। फूल भी सूर्योदय से सुख की सांस का अनुभव करके आनन्दित होकर महकने लगते हैं। कहने का भाव यह है कि गहनतम अंधकार को तुम्हारे गीत काट सकते हैं और सभी प्रसन्नता से पूरित हो उठते हैं।

दैन्यविहीनं
स्वं विस्तारय
सुदृढ़ मनोवितानम्।
सुदृढं मनोवितानम्।

अर्थात् दीनता (दैन्यभाव) का परित्याग कर अपने मन के संकल्प को और सुदृढ़ बनाओ तथा उसका विस्तार करो। क्योंकि संकल्प साधना का उद्देश्य है। दैन्य मन को क्षीण करना और संकल्प को मजबूत करना। मन जितना क्षीण होता जायेगा, संकल्प उतना ही मजबूत होता जायेगा। क्योंकि मनुष्य के जीवन में उसके संकल्प की बड़ी सम्भावनाएँ हैं लेकिन मनुष्य है कि संकल्प के संबंध में न कोई विचार करता है और न ही किसी प्रकार का महत्व देता है। जबकि वास्तविक जीवन में संकल्प का बहुत ज्यादा महत्त्व है। जीवन में यदि कहीं सफलता है तो उसकी पृष्ठभूमि में संकल्प अवश्य होगा।

अष्टम सर्ग गीति 28–

नौकामिह सारं सारम्
गन्तास्मि कदाचित् पारम्
उत्तीर्णः स्यामपि मन्ये
पारावारमपारम्।।

अर्थात् यहाँ (इस संसार में) सागर में हम नौका को चलाते–चलाते कभी तो पार हो जाएँगे। इसलिए यह निश्चित है कि इस अपार, अथाह, अनन्त, पारावार (समुद्र) को हम (उत्तीण कर) पार कर जाएँगे। अर्थात् इस पार से उस पार हो जायेंगे। कहने का आशय यह है कि यह संसार रूपी नौका को पार कर लेगें या उसे (उत्तीर्ण कर) पार कर लेगें। संसार में जो लोग अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं और पहुँचे हैं, उन्नति के चरम काष्ठा पर, भले ही वह भौतिक हो या आध्यात्मिक उसकी पृष्ठभूमि सदैव संकल्प और दृढ़ निश्चय रहा है।

इमा लहर्यो नैव स्यु–
र्नावर्ता इमे भवेयुः
मनः प्रगुणयाम्यग्रे
संकल्पं धारं धारम्
गन्तास्मि कदाचित् पारम्।।

अर्थात् न तो ये सागर की लहरियाँ बाधा बन पायेंगी और न ही इसके आवर्त (भँवरे)। मन के संकल्प को द्विगुणित करते हुए संकल्प धारण कर समुद्र की प्रत्येक धाराओं को हम पार कर जायेंगे। धारायें हमारा क्या कर सकती हैं। इस तरह कदाचित् तो हम समुद्र के पार हो जाएँगे। जैसे–जैसे आप छोटे संकल्प करते जाएंगे और उन्हें पूर्ण करते जायेंगे वैसे ही आपके भीतर ऊर्जा एकत्रित होती जायेगी जो आपके काम आयेगी। यदि आप अपने संकल्प में सफल हो गये तो आप अपने भीतर दृढ़ निश्चय का भाव पायेंगे जो जीवन के लिए अति आवश्यक है।

गच्छति पुरः शरीरं
ध्यायति चेतस्तीरम्
तीरमुज्झितं पृष्ठे
परितः केवलमिह नीरम्
नीरमिदं तारं तारं
गन्तास्मि कदाचित् पारम्।।

अर्थात् तीर (अगले किनारे) का चिन्तन (ध्यान) करते हुए शरीर आगे की ओर बढ़ रहा है। जहाँ से चले वह तीर पीछे होता जा रहा है और हमारे चारों तरफ यहाँ (समुद्र) में केवल नीर (जल) है। इस नीर (जल) को हटाते–हटाते कभी (कदाचित्) तो हम समुद्र पार हो जायेंगे। कहने का आशय यह है कि मनुष्य जितने भी शारीरिक कार्य करता है उन सब में मन की एकाग्रता परम आवश्यक है। ये सब तो बहुत दूर की बात हैं, छोटे से छोटा कार्य करने में भी मन की भूमिका नितान्त महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत पद में कवि ने कालिदास के प्रथम अंक के अन्तिम श्लोक में जैसे दुष्यन्त 'गच्छति पुरः शरीरं धावति' (के सदृश) शकुन्तला की ओर ध्यानाकृष्ट होकर चला जाता है, उसी तरह धीवर भी तीर के ध्यान में अग्रसरित है।

सरति समस्तः संसारः
प्रोदवेल्लति पारावारः
पारावारे नौका
नौकायां गतिसंचारः।
नौकामिह सारं सारम्
गन्तास्मि कदाचित् पारम्।।

अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार सागर (सरित जलवत्) संचर्यमाण (चलायमान) है। सागर की घनीभूत लहरों के सदृश ही आलोडित विलोडित (ऊपर–नीचे) होता हुआ अग्रसरित हो रहा है। इस अनन्त असीम पारावार में (मानव जीवन रूपी) नौका को चलाते–चलाते कभी तो हम पार हो जायेंगे।

11.4 प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी विरचित गीति धीवरम् का वैशिष्ट्य

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी विरचित गीतधीवरम् पर अपनी समाशंसा **प्रो. दयानन्द भार्गव** ने लिखी है। प्रो. भार्गव संस्कृत विभाग रामजस कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्राध्यापक रह चुके है। यह समाशंसा पठनीय है जो अधोलिखित है–

परम्परा का आशय है प्राचीन से अभिनव का सर्जन। आचार्य राधावल्लभ की नवीनतम्

कृति 'गीतधीवरम्' इसी अर्थ में परम्परागत काव्य है। असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कवि अपने से पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों को आत्मसात् करके ही नवीन का सर्जन करता है। जो सर्वथा नवीन का सर्जन करने की अहम्मन्यता में रहते हैं प्रायः वे आकाशकुसुम की माला ही पहनना चाहते हैं। आचार्य राधावल्लभ ने संस्कृत कवियों की पूरी परम्परा को आत्मसात् किया है। यह कार्य सरल लम्बी परम्परा है–वाल्मीकि से लेकर पंण्डितराज जगन्नाथ तक। कालिदास, भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष को समेटने के लिए महाप्राण कवि चाहिए। सौभाग्य से आचार्य राधावल्लभ में यह सामर्थ्य है। वस्तुतः पण्डितराज जगन्नाथ के बाद भी संस्कृत में बहुत कुछ ऐसा मूल्यवान लिखा गया है, जिसे सामान्यतः हम उपेक्षणीय मान लेते हैं। किन्तु आचार्य राधावल्लभ की पैनी दृष्टि से वह भी छिपा नहीं है। समकालिक संस्कृत के सर्जनात्मक पक्ष से तो वे सक्रिय रूप से जुड़े ही हैं। इस विशेषता के अतिरिक्त आचार्य राधावल्लभ प्राचीन का अतिक्रमण करके अभिनव का सर्जन करने का सामर्थ्य रखते हैं। संस्कृत की श्रेण्य शैली का अनुकरण करने वाले दूसरे भी अनेक कवि हैं किन्तु उनका अतिक्रमण करके संस्कृत की रचना को आधुनिक काव्य की कोटि में लाना सरल नहीं है। आचार्य राधावल्लभ ने अपनी अन्य कृतियों के समान ही गीतधीवरम् में इस दिशा में अद्भुत प्रतिभा प्रदर्शित की है। संस्कृत भाषा के मुहावरे का उल्लंघन किये बिना अधुनातन भावबोध को अभिव्यक्ति दे देना उनकी अपनी विशेषता है।

गीतधीवरम् के प्रथम सर्ग का प्रथम छन्द ही आचार्य राधावल्लभ की संस्कृत के मुहावरे की पकड़ को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है–

मेघैर्मेदुरम्बरं च जलधिं तुङ्गेस्तरङ्गैर्वृतं
दर्शदर्शमसौ स्वकीयं उडुपे धीरं स्थितो धीवरः।

ध्यायं ध्यायमनन्तसङ्कुलपथं स्वां क्षेपणीं सारय–
त्रित्थं स्वस्य च सागरस्य च दशां सम्भावयामास सः।।

मुहावरे तथा छन्द के प्राचीन होने पर भी इन पंक्तियों की विषयवस्तु इस तथ्य की ओर संकेत करने के लिए पर्याप्त है कि ये 20 वीं शती में लिखी गई हैं। इसके आगे प्रथम गीत की तो कोई भी कड़ी कवि के आधुनिकता के बोध को स्पष्ट कर देती है–

त्रायते दुर्बलं मत्स्यमेनं लघुं
ग्रस्यमानं तु पीनेन मीनेन कः?

पश्यतो विप्लवं क्षुण्णपाथोनिधेः
मानसे धीवरस्य व्यथा जायते।।

आधुनिक गीतों की शैली पर प्रत्येक कड़ी की अन्तिम पंक्ति में तथा, वृथा, यथा, कदा का अन्त्यानुप्रास तो आधुनिक है, किन्तु अभी मुक्त छन्द का लचीलापन इन कड़ियों में नहीं है। दसवें गीत में वह मुक्त छन्द भी फूट पड़ा है–

इतस्तोलने त्वितो मापने
साहं साहं कष्टम्
इतो धावने त्वरया गमने
सुखमिह सर्वं नष्टम्

जातं जीवनमस्तव्यस्तम्
धीवर, नश्वरमस्ति समस्तम्।।

अन्त्यानुप्रास का आकर्षण इस मुक्त छन्द में भी बना है, किन्तु वह प्रलोभन भी अन्ततोगत्त्वा कवि को छोड़ ही देता है–

सीमानो न भवन्ति जलधौ
सीमान्तायते जलभाले सा केवलमेका नौका
सेतुमन्विष्यति सदैव मानव आजीवनं
प्रचीयते जीवनं विलीयते च बुद्बुद्प्रभं
सेतुर्न हि कोऽपि भवति तज्जलधौ
सेतूयतेऽत्र सुस्थिरं सा केवलमेका नौका।।

इस प्रकार कवि एक छोर से प्राचीन का स्पर्श करते हुए दूसरे छोर से नवीन को स्पर्श कर लेता है। संस्कृत में ऐसी कविताओं का प्रायः अभाव है, जो कवि के अन्तर्जगत् में चलने वाले संकल्प विकल्पों पर ही केन्द्रित हो किन्तु अन्य भाषारूपों में ऐसी कविताओं का वर्तमान में बाहुल्य हो गया है। डॉ. त्रिपाठी ने गीतधीवरम् में इस कोटि के अनेक गीत लिखे हैं–

याति देहोऽग्रत शीर्यते चेतना
चेतनायाचं मे जीर्यते विकल्पायिता
कामनायां विचारा विकल्पायिता
ते विकल्पा विकीर्णा महासागरे।।

आधुनिक व्यक्ति की आन्तरिक टूटन को ये पंक्तियाँ अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रकार की कविताओं में रस है या नहीं मानो इसी प्रश्न का उत्तर कवि ध्वनि द्वारा देता हुआ कहता है कि वह रस तो रेती में छिपा हुआ है–

गृहितः संस्थितोऽसौ रस सैकते।

यद्यपि वह वर्णन सागर का है, किन्तु अपने काव्य में रस ढूँढने वालों के लिए भी एक गुप्त संकेत कवि ने दिया है। कहीं–कहीं कवि अपने अभिप्रेतार्थ को किसी एक ऐसे पद द्वारा ध्वनित करता है, जिसकी ओर सामान्यतः हमारा ध्यान नहीं जाता। उदाहरणतया कवि कहता है–

सागरं मे वडवानलो वहति किम्?

क्या मेरे सागर को वडवानल जला रहा है? यहाँ 'मे' पद आपातत निरर्थक सा है। सागर मेरा या तेरा कैसे हो सकता है? सागर का कोई व्यक्ति स्वामी नहीं होता है। ऐसी स्थिति में मेरा सागर कहकर कवि यह स्पष्ट कर देता है कि वह अपने सागरोपम गंभीर व्यक्तित्व की ओर संकेत करना चाहता है। इसी प्रकार धीवर को यह कहना कि उमर उसी प्रकार बीत रही है जिस प्रकार अंजलि में जल रिस जाता है, इस ओर संकेत करता है कि कवि स्वयं की ही धीवरता (समझदारी) को सम्बोधित कर रहा है–

विधृत्वं पयोऽजंलिना वलिना
गलितं नु तथैव दयो गलितम्

अयि धीवर चिन्तय कालगति
नौकामग्ने नयसे न कथम्?

अनेक स्थलों पर ध्वनि इतनी सरल है कि यह जान लेने पर भी कि कवि वाच्यार्थ से इतर कुछ कहना चाहता है, यह जानना कठिन हो जाता है कि कवि का अभिप्रेतार्थ क्या है–

न स्थले न गगने विस्तृते विमले
धीवरोऽहं जीवन मदीयं जले।

यहाँ जल से कवि का क्या अभिप्राय है–यह सहृदय पाठक की कल्पना पर छोड़ दिया गया है। यह एक विशेष प्रकार का गुण है, क्योंकि इस जगह पाठक केवल एक श्रोता ही नहीं रह जाता प्रत्युत जल का कोई अर्थ निकालने में अपनी कल्पना का सक्रिय उपयोग करने में स्वयं भी माना उसे एक सर्जन करना पड़ता है अर्थात् अकवि को भी कवि बनना पड़ता है।

कहीं–कहीं धीवर (माँझी) बिल्कुल ही छूट गया है। शेष रह गया है केवल कवि जो शब्दों की नौका से लहरियों पर गीत लिख रहा है–

लहरीषुमयागीतिर्लिखिता
रचिता नूतनशब्दतरी।

सागर सम्मुख है किन्तु कभी–कभी माँझी के भाग्य में केवल उसके तट पर सन्तत रेती में तपना रह जाता है–

तप्ते सैकतभाग एष निभृते जोषं स्थितोधीवरः

कवि समस्त मानसी व्याकुलता के बावजूद किसी अज्ञात परिवर्तन की प्रतीक्षा में है–

उत्तरायणमिदं कथं ते
स्वयं तु दक्षिणायताम्
क्षपय कालं कथमपीह धीवर
ग्रीष्मोहि भीष्मायते।।

यहाँ प्रथम दो पंक्तियों की दुर्बोधता भी उल्लेखनीय है। कवि राधावल्लभ का दूसरा पक्ष उनकी शास्त्राभिज्ञता है और उसके रहते बिल्कुल सरल गीत सरल न होना उन्हें फिल्मी गीतों की कोटि में आने से बचाता है और शायद यही तत्त्व उनकी चिरायुता का हेतु बन जाए। जबकि अत्यन्त सरलता के कारण लोकप्रिय प्रतीत होने वाले गीत अल्पायु ही होकर रह सकते हैं।

धीवरगीतम् के गीतों में आधुनिक युग की कुण्ठा का अभिव्यक्त होना स्वाभाविक है, किन्तु इन कुण्ठाओं के बीच गान का वैकुण्ठभाव भी है–

स्पृशत्वकुण्ठित–
मागगनान्तं
दिग्वलय तव गानम्

कवि सर्वत्र सहज है, किन्तु कहीं–कहीं पाण्डित्यपूर्ण अनुप्रास का प्रयोग भी करता है। शायद ऐसे प्रयोग भी सायास/सप्रयास न किये गये हों प्रत्युत सहज ही हो गये हैं–

मैत्री च निर्व्याजरसप्रवाहा
चैत्री च रात्रि शुभपूर्णिमायाम्।

नेत्री मतिर्दूरविमर्शरम्या
क्वासौ भवित्री खल सिन्धुजेत्री।।

प्रसन्नता की बात यह है कि कवि विविध भावों में डूबता उतरता हुआ भी अन्ततोगत्त्वा आश्वासन की भाषा ही बोलता है–

अङ्गणवेदी वसुधा भविता
कुल्यातुल्यो जलधिर्भविता
प्रस्थाने क्रियमाणे तूर्णं
बाधा सर्वा दूरी भविता।।

यहाँ कवि इतनी प्रसन्नता में है कि वाल्मीकि, व्यास जैसे आडम्बरहीन कवियों की भाँति उसे यह भी चिन्ता नहीं है कि पण्डित तीन बार एक ही पद 'भविता' की पुनरावृत्ति देखकर कहीं उसे शब्द दारिदय का दोष न दे दें। वस्तुतः पूरे गीत संग्रह को देखने के बाद उसके वैभव के बारें में कोई सन्देह शेष नहीं रह जाता। सभी रचनाधर्मियों तथा राधावल्लभ जी के लिए मेरा वही सन्देश है, जो स्वयं उन्होंने अपने गीतधीवरम् के आखिरी गीत की आखिरी पंक्तियों में दिया है–

प्रेरयधीवरं नौकामग्रे
प्राप्तस्त्वं खलु नवसंसारम्।।

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइये।

i) प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का जन्म कहाँ हुआ है। (मध्यप्रदेश के राजगढ़ जनपद में/उत्तरप्रदेश राज्य के मेरठ)

ii) गीतधीवरम् गीतिकाव्य में किसके द्वारा गाये गीतो को संकलित किया गया है। (धीवरों के/मनुष्यों के)

iii) गीतधीवरम् में क्या प्रकट किया गया है। (संकल्पना शक्ति को/विकल्पात्मक शक्ति को)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

I. गीतधीवरम् के माध्यम से ..... बात की जा रही है। (मनुष्यों के संकल्प शक्ति की/सैनिकों के संकल्प शक्ति की)

II. हमारे शास्त्र, गीता एवं उपनिषदों का .....संदेश है। (मनुष्य अपना उद्धार स्वयं करे/चोर अपना उद्धार स्वयं करे)

बोध प्रश्न 2

1. गीतधीवरम् के प्रथम गीति के प्रथम पद्य में कवि क्या कहना चाहता है?

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

गीतधीवरम् में वर्णित युगबोध एवं सामाजिक सन्देश को स्पष्ट कीजिए।

11.5 सारांश

गीतधीवरम् आधुनिक संस्कृत काव्यविधा के अन्तर्गत 'रागकाव्य' में आता है। प्रस्तुत रागकाव्य वस्तुतः जीवन दर्शन है, जिसमें कवि ने रूपक के माध्यम से अथवा काव्यबिम्ब के माध्यम से मानव–जीवन की संसार सागरीय नौका के झंझावातों को प्रस्तुत किया है। धीवरगीति यहाँ वाच्यार्थस्वरूपतः प्रस्तुत है, परन्तु अप्रस्तुत लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ है–धीवरवत् मानवजीवन में समागत समस्त प्रकार की समस्याओं का अखिन्न मन से सामना करना तथा उन पर विजय प्राप्त करना। कवि इस काव्य के माध्यम से एक तरफ तो धीवरों को सान्त्वना दे रहा है कि इस विशाल सागर में धैर्यधारण कर नौका को अग्रसरित करो। सागर की भयानक लहरियों से मत घबराओ तथा दूसरी तरफ उसका संकेत संसार के सभी मनुष्यों को है कि हे मनुष्यो! इस संसार सागररूपी भयानक लहरों (अप्रतिपत्तियों, अव्यवस्थाओं, त्रितापों तथा अन्य समस्त प्रकार की सांसारिक यातनाओं) से मत घबराओ, मन को दृढ़संकल्प के साथ मजबूत कर (सुख–दुखेसमेकृत्वा लाभलाभौ जयाजयौ) में समानधर्मा बनो। तुम निश्चित ही सागर (संसार सागर) को पार कर जाओगे। अतः प्रस्तुत लहरीकाव्य में कवि का यही सन्देश है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी के जीवनवृत्त एवं कर्तृत्व तथा उनके द्वारा रचित धीवरगीति : प्रथमा एवं द्वितीया गीति में वर्णित युगबोध एवं सामाजिक सन्देश एवं गीति धीवरम् का वैशिष्ट्य के विषय का वर्णन किया गया है।

11.6 शब्दावली

संकल्प – दृढ़ इच्छा शक्ति

विकल्प – कमजोर इच्छा शक्ति

नौका – नाव

लहरी – समुद्र की तरंगे

धीवर – नाविक

तम – अधंकार

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- आधुनिक संस्कृत साहित्य संग्रह, सम्पादक डॉ. राजमंगल यादव, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
- अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, डॉ. राजमंगल यादव, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, पंचम खण्ड, गद्य, आचार्य बलदेव उपाध्याय, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2003
- संस्कृत साहित्य का इतिहास, उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' जयकृष्णदास, प्राच्यविद्या गद्य माला चौखम्भा भारती अकादमी वाराणसी 2016
- आधुनिक संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा, डॉ. मंजुलता शर्मा, परिमल पब्लिकेशसन्स नई दिल्ली

- संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र, प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी प्र. सं. 2010
- संस्कृत साहित्य : बीसवीं शताब्दी, राधावल्लभ त्रिपाठी, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 1999

11.8 बोध प्रश्न/उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. (i) मध्यप्रदेश के राजगढ़ जनपद में (ii) धीवरों के (iii) संकल्पना शक्ति को
2. (i) मनुष्यों के संकल्प शक्ति को (ii) मनुष्य अपना उद्धार स्वयं करें

बोध प्रश्न 2

1. एक तरफ इस कविता में धीवरों की, उनके गान के द्वारा संकल्पना शक्ति को कवि ने पुनर्संस्कृत किया है, तो दूसरी तरफ मानव समाज की संकल्पना शक्ति को। जिस प्रकार धीवर अथाह समुद्र में नौका चलाते–चलाते थक जाता है तो उसका मन कमजोर होने लगता है और वह निराशाग्रस्त हो जाता है, उसी प्रकार इस संसार सागररूपी नौका (गृहस्थजीवन रूपी नौका) को चलाते–चलाते मनुष्य थक जाता है।

विपुलाधरणी ततोऽपि विपुलः सागरतलविस्तारः
विपुलतरोऽयं परं त्वदीयः संकल्पाकूपारः।

अर्थात् यह पृथ्वी अत्यन्त विस्तृत है परन्तु उससे भी विस्तार वाला सागरतल है। परन्तु हे धीवर! इस सागर से भी अत्यधिक विशाल आपका अपार संकल्प है। इस काव्य में कवि कहना चाह रहा है कि विस्तृत सम्पूर्ण पृथ्वी है और उससे भी विशाल सागर तल है। इन दोनों से मनुष्यों को सीख लेनी चाहिए कि पृथ्वी के अन्दर इतना धैर्य है कि सम्पूर्ण सिर पर सम्पूर्ण संसार को बसा करके रखा है और उससे भी महान सागर है जो लहरा कर भी गम्भीर भाव को बना रखा है किन्तु हे मनुष्यों! उससे विशाल तुम्हारा संकल्प है क्योंकि सभी मनुष्य चाहे कर्मनिष्ठ हो अथवा ज्ञाननिष्ठ हो अथवा बुद्धिमान हो और चाहे दूसरे को सत्बुद्धि देने वाले ध्यान निष्ठ योगी हों, सब संकल्प के द्वारा ही कार्य करते हैं। वे कर्म चाहे शान्ति के समय किये जाने वाले शुभ, श्रेष्ठ और उत्तम कर्म हों और चाहे अशांति के समय किये जाने वाले कार्य हो। सबका प्रारम्भ अपार संकल्प है। यदि संकल्प शुद्ध और पवित्र संकल्पों वाला होगा तो मनुष्य के कर्म भी शुभ और उत्तम होगें जिससे परिवार, समाज, राष्ट्र व समस्त संसार में शांति का साम्राज्य स्थापित होगा।

अभ्यास प्रश्न–

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY